http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

व्यक्तिगत व राष्ट्रीय चरित्र

श्री गुरुजी के दृष्टिकोण से

संकलनकर्ता

श्री अशोकराव मोडक

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

व्यक्तिगत व राष्ट्रीय चारित्र्य

श्री गुरुजी के दृष्टिकोण से

संकलन कर्ता
श्री अशोकराव मोडक

Download Free Hindi Books:-

https://freehindibooksforyou.blogspot.com

Like on Facebook :-

Free Hindi Books

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

प.पू. श्री गुरुजी का व्यक्तित्व 'कोहिनूर' जैसा शतमुखी तेज बिखरने वाला था। उस हीरे पर जिस रंग की रश्मि पड़ती है, उसी को सौ गुना तेज से वह प्रतिभासित करता है। बस, इसी प्रकार पूज्य श्री गुरुजी का भी व्यक्तित्व था, उनके सामने जिस प्रकार की परिस्थिति उपस्थित होती थी उसे अनन्त मुख से वह प्रकाशित एवं उस परिस्थिति के अतंर-बाह्य स्वरूप को भी सभी दृष्टि से उजागर करता, तदनुसार उसे पार करने के उपाय भी वे आलोकित करते है और उस दिशा में सबसे आगे कदम बढ़ाते थे।

-हो. वे शेषाद्रि

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

व्यक्तिगत व राष्ट्रीय चारित्र्य श्री गुरुजी के दृष्टिकोण से

सन १९६२ की वर्षप्रतिपदा के दिन, ५ अप्रैल को, नागपुर के रेशिमबाग संघ स्थान पर डॉ. हेडगेवार जी की पुण्यस्मृति में स्मृतिमंदिर की स्थापना हुई। इस मंदिर के उद्घाटन कार्यक्रम में भाषण देते हुए श्री गुरुजी ने डॉक्टर जी के जीवनकार्य की अलौकिक विशेषता पर प्रकाश डाला।

''डॉक्टर जी ने कोरा उपदेश कभी भी नहीं दिया। राष्ट्रीय जीवन में उन्होंने शील सम्पन्नता का, चारित्र्य सम्पन्नता का, राष्ट्र की निःस्वार्थ सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया। राष्ट्र, साक्षात परमेश्वर स्वरूप है, भारत माँ, साक्षात् जगत्‌जननी है। क्या भ्रष्ट देह से उनकी पूजा हो सकेगी? जगत्‌जननी स्वरूप मातृभूमि का पूजन करने के लिए जीवन कि अंतर्बाह्य शुद्धता आवश्यक है। “मैं इस राष्ट्रदेवता का पुजारी हूँ” इस प्रकार का अहर्निश चिंतन करते हुऐ हमें दुर्गुणों को त्याग कर अपना जीवन पवित्र बनाना चाहिए। हम लोगों के सम्मुख पूजनीय डॉक्टर जी के अंतर्बाह्य विशुद्ध आचरण का आदर्श है। वे कामिनी और कंचन दोनों के प्रभाव से मुक्त रहे। सत्यप्रियता, ईमानदारी, विशुद्ध चारित्र्य, दृढ़ता आदि गुणों से युक्त निरलस राष्ट्रसेवा का प्रत्यक्ष उदाहरण आँखों के सामने होने के कारण, हजारों स्वंयसेवकों को घरबार छोड़कर, अपने कैरियर का मोह छोड़कर, राष्ट्रसेवा के लिए सर्वस्वार्पण करने की प्रेरणा उनसे मिली।''१

इस पर से ध्यान में आएगा की सहस्र वर्षो का पारतंत्र्य मिटाना है तो इस राष्ट्र पर निरपेक्ष प्रेम करने वाले लोग हर कहीं खड़े किये जाएं इसके लिए एक-एक व्यक्ति पर राष्ट्र भक्ति के मौलिक संस्कार करने होंगे। ऐसे लोगों की संगठित शक्ति से अपेक्षित समाज परिवर्तन करना होगा। संघ संस्थापक की यह दृढ़ भूमिका थी। डॉक्टर जी का यह आग्रह था कि राजकीय कार्य से भी अधिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्य श्रेयस्कर माना जाए। इस आग्रह से ही मानवी नियोजन यह उनके लिए जीवन का उद्योग बना।

श्री गुरुजी पर संघ का प्रमुख दायित्व आया। डॉक्टर जी द्वारा सौंपा गया दायित्व आगे बढ़ाने का उन्होंने निश्चय किया। आश्चर्य तो इसका है कि यह निश्चय उन्होंने सहस्रों अनुयाइयों में उतारा। आंदोलन, राजकीय उठापटक, सत्तांतर, प्रतिबंध ऐसे भिन्न भिन्न अवसर आए। हर बार कसौटी के, परीक्षा के क्षण आये। यह करें या वह करें ऐसे प्रश्न उपस्थित हुए। लोग पूछने लगे कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मूल मार्ग क्या छोड़ दोगे? पर चारित्र्यसंपन्न लोगों को गढ़ना और ऐसे लोगों के माध्यम से ही हिन्दू संस्कृति के अनुरूप समाज परिवर्तन करना यह दायित्व डॉक्टर जी से प्राप्त हुआ, अपना दायित्व है, यह भूमिका उन्होंने स्वीकार की। यही नहीं तो अपने सात्विक कार्य के प्रभाव से यह भूमिका देशभर फैले स्वयंसेवकों के गले उतारी। उसी में से व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

चारित्र्य का महत्व समाज मन पर अंकित किया जा सका। कालांतर में सभी समझ गये कि इस मार्ग से अक्षय काम खड़ा किया जा सकता है।

हमारे देश के स्वातंत्र्य युद्ध में एक-एक सेनानी ने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय चारित्र्य के संदर्भ में अपने स्वयं के उदाहरण, असामान्य दर्जे का वस्तुपाठ, सभी के सामने प्रस्तुत किया है। स्वातंत्र्य संग्राम से रूढ़ार्थ से दूर रहें महर्षि कर्वे, कामगार नेता ना. म. जोशी आदि ने अविस्मरणीय आदर्श इस मामले में प्रस्तुत किये हैं। इन सभी ने अपने व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक व्यवहार से समाज कार्य का आध्यात्मिकरण किया, यह कहा जा सकता है। श्री न.र.फाटक द्वारा लिखित "आदर्श भारत सेवक" इस शीर्षक के अंतर्गत गोखले चरित्र का एक परिच्छेद यहाँ प्रस्तुत है।

".......अपना कार्य लोकहित का है, इसके प्रति नितांत विश्वास हो। कितने भी विघ्न आयें, उसे न छोड़ने की निष्ठा हो, लगन हो। इष्ट फल मिलेगा ही यह आशावाद हो। लोगों की अनुकूलता पाने के लिए, उनसे लिए धन का आशंकारहित हिसाब रखा जाए। शत्रु और मित्र से एक समान स्नेहपूर्ण व्यवहार, समाजशीलता आदि गुण लोकसेवक का कर्तव्य होता है।'' (२)

श्री न.र.फाटक ने विभिन्न श्रेष्ठ जनसेवकों के बारे में विवेचन करने के बाद भारत सेवक गोखले जी के संबंध में मार्मिक बात कही है।

''राजकारण में दंभ, दर्प, लोभ आदि विकारों का प्राबल्य रहता है। इसके लिए यथेष्ट अवसर रहते हैं। दैवी संपत्ती के गुणों को वहाँ स्थान नहीं। सामान्य रूप से यही समझा जाता है। यह सच्चाई नहीं। अध्यात्म गुणों के कारण राजकारण यह लोगों की निगाह में लाने का अनुष्ठान जीवनभर गोपालराव ने चलाया।'' (३)

इस से यह स्पष्ट होता है कि, व्यक्तिगत चारित्र्य शुद्ध रखकर समाजकार्य-राजकार्य किया जा सकता है। इस मार्ग से किया गया राजकार्य श्रेष्ठ होता है। अपने भाग्य से रानडे, फुले, आगरकर, तिळक, विवेकानंद, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रामतीर्थ, लाला लाजपतराय, बिपिनचंद्र पाल आदि कई विभूतियों ने सार्वजनिक जीवन का आध्यात्मीकरण किया और अपने अनुयाइयों के सम्मुख अनमोल आदर्श कायम किया। वस्तुतः यह भी कहॉ जा सकता है कि इन अलौकिक अभिजनों के उपदेश से एवं जीवन से, देश की शिथिलता दूर हुई। अध्यात्म का गलत अर्थ लिया जा रहा था, वह दुरुस्त हुआ। भारत के भव्य भूतकाल से संबंध जुड़ा। लोकमान्य तिलक ने तो गीतारहस्य लिखकर गीता ग्रंथ का निवृत्तिपर अर्थ गलत है यह प्रमाणित किया और तर्कशुद्ध पद्धति से यह प्रतिपादित किया की स्वार्थ में डूबने की बजाय परमार्थ का विचार, व्यवहार करना चाहिए। गीतारहस्य की प्रस्तावना का अंत अत्यंत गहरा है। लोकमान्य कहते हैं -

"किये बगैर कुछ होता नहीं - यह सृष्टि का नियम ध्यान में रखकर निष्काम बुद्धि से कर्ता बनो। केवल स्वार्थ परायण बुद्धि से संसार कर रहे लोगों के कालक्रमणार्थ या संसार छोड़कर जाने की तैयारी करने वालों के लिये गीता नहीं बताई गई। मोक्ष प्राप्ति के लिये व्यवहार कैसा हो यह तात्विक दृष्टि से उपदेश करने के लिए ही गीता शास्त्र की प्रवृत्ति हुई है।'' (४)

अपनी संविधान सभा ने २६ नवम्बर १९४९ को, भारतीय संविधान स्वीकार किया। इसके एक दिन पूर्व याने २५ नवम्बर को डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने संविधान सभा में जो भाषण किया वह

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

सभी की अंतःकरण की व्यथा शब्दबद्ध करने वाला था। एक अर्थ से वह प्रातिनिधिक था यह निश्चित है। इनके भाषण का आशय कितना अर्थपूर्ण था देखिए –

"...... मेरे मन में राष्ट्र के भवितव्य के प्रति गहरी चिंता है। मुझे अतीव दुःख होता है इस बात से कि भारत को अपना स्वातंत्र्य इसके पूर्व भी अनेक बार खोना पड़ा है। भारतीय जनता की, स्वयं की विश्वासघातक वृत्ति से यह होता रहा। देशद्रोह के कारण से भी यह हुआ। मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध पर आक्रमण किया तब राजा दाहिर के सेनापति ने ही मोहम्मद बिन कासिम के मुनीम से रिश्वत ली – अपने राजा का साथ देने से वह साफ मुकर गया। गोरी को हिंदुस्थान पर आक्रमण करने का और पृथ्वीराज के विरुद्ध लड़ने का आमंत्रण देने वाला जयचंद था। उसने सोलंकी राजाओं से मोहम्मद गोरी को सहायता देने का वचन लिया था। हिन्दुओं के स्वातंत्र्य हेतु शिवाजी महाराज युद्ध कर रहे थे और दूसरी ओर अन्य मराठे सरदार एवं राजपूत, मुगल बादशाह का साथ दे रहे थे। अंग्रेज, सिख राजकर्ताओं से लड़ रहे थे और सिखों का मुख्य सेनापति गुलाबसिंह चुपचाप बैठा था। सिखों के स्वातंत्र्य का संरक्षण करने का थोड़ा भी प्रयत्न उसने नहीं किया। १८५७ में हिंदुस्थान में भारी मात्रा में अंग्रेजो के विरुद्ध स्वातंत्र्य युद्ध छेड़ा गया। पर उस समय सिख युद्ध को हैरानी से देखते बैठे रहे।'' (५)

डॉ. बाबासाहब अंबेडकर ने इस भाँति भारत के भूतकाल का मार्मिक उल्लेख किया और उसी संदर्भ में भविष्य के प्रति चिंता भी प्रकट की। "हिन्दू समाज में जातिभेद, पंथभेद समान उसके शत्रू हैं ही पर अब उसमें परस्पर के विरुद्ध रहने वाले राजकीय दलों की जोड़ और मिली है। इसी कारण मेरी चिंता बढ़ी है। राष्ट्रहित से दलहित श्रेष्ठ माना गया, तो भारतीयों का स्वातंत्र्य दूसरी बार खतरे में पड़ेगा और हो सकता है वह हमेशा के लिए नष्ट हो जायेगा। यह नहीं होना चाहिए।"(६)

श्री मो.ग.तपस्वी द्वारा संपादित 'अमृताचे बोल' शीर्षक की प्रस्ताव में स्वातंत्र्यवीर सावरकर द्वारा पुणे में १० मई १९५२ को दिया गया भाषण संग्रहित है। सावरकर जी ने भारतरत्न डॉ. अंबेडकर के सुर में सुर मिलाकर यह अभिव्यक्त किया है कि पक्षभेद से राष्ट्र को खतरा हो सकता है।

".....एक ही सरोवर से पानी निकालने वाले भाँति-भाँति के बर्तनों के समान हमारे राजनैतिक दल भी एक ही समाज से उठे है। इसी कारण उनमें गुण-दोष समान ही होंगे। ऐसी स्थिति में तत्कालीन शासन संस्था की ओर से कुछ राजकीय गलतियाँ हुई, कुछ लोंगो को द्वेष से छला गया। फिर भी एकदम सिरफिरा नही होना चाहिये"। (७)

तात्पर्य व्यक्ति, परिवार, जाति, पंथ वा दल इन्हें राष्ट्र से अधिक मानकर भारतीय नागरिक भारत का स्वातंत्र्य क्या पुनः खतरे में डालेंगे? इस चिंता में अनेक श्रेष्ठ जन अस्वस्थ थे। आज भी हैं। यह वस्तुस्थिति है। इस दृष्टि से राष्ट्रीय चारित्र्य निःसंदेह महत्त्व का है।

भारत में ब्रिटिश राज स्थिर होने के बाद, वह राज्य हटाकर मातृभूमि को स्वतंत्र करने के लिये राष्ट्रीय चारित्र्य याने समूहधर्म नितांत आवश्यक है, यह पहचानकर देश के श्रेष्ठ नेताओं ने इस ओर अथक परिश्रम भी किये। यही परंपरा डॉ. हेगडेवार जी एवं श्री गुरुजी ने कायम रखी। पर इन दोनों के इन प्रयासों के दो विशेष पहलू थे, उन्हें विषद करना होगा। व्यक्तिगत चारित्र्य तद्वत राष्ट्रीय चारित्र्य की श्री गुरुजी की जो धारणा थी उसे अधिक स्पष्ट करना होगा। दोनों प्रकार का

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

चारित्र्य भारत में पनपे याने वास्तव में क्या हो, क्या किया जाए, इस सम्बन्ध में श्री गुरुजी का चिन्तन ही स्पष्ट किया जाय।

भारत का इस्लामपूर्व इतिहास श्री गुरुजी को हमेशा ही प्रेरणादायी लगा। इस संदर्भ में अपने विचार उन्होने अत्यंत उत्कटता से सर्वदूर रखे। इस कालखंड में रहे पूर्वजों का चारित्र्य श्रेष्ठ दर्जे का था ही, राष्ट्रीय चारित्र्य भी उच्चतम था। इसी कारण भारतवर्ष सदैव विजय पाता रहा। रामायणकाल और महाभारत काल में समूहधर्म की वैयक्तिक धर्म के साथ उपासना हुई। इसी कारण तो ‘यतो धर्मस्ततो जयः’ यह सुभाषित साकार हुआ। छत्रपति शिवाजी के काल में भी, यही धर्म प्रभावी रहा। अपने बेटे का विवाह दूर रखकर ‘कोंढ़ाणा’ जीतने के लिये प्राणों की बाजी लगानेवाले इसी कारण आगे बढ़े। कोई बाजीप्रभु प्राणों को न्योछावर कर पावनखिंड (दर्रे) पर शत्रु को रोकने में सफल रहे। इस समूहधर्म को व्यक्तिगत चारित्र्य की जोड़ रही, इसी कारण हीरोजी फर्जन्द समान सामान्य व्यक्ति भी हौतात्म्य स्वीकार करने के लिये आगे बढ़े। “होता जिवा म्हणून वाचला शिवा” यह पंक्ति ऐसे ही एक सर्वसामान्य व्यक्ति की वीरगाथा पीढ़ी दर पीढ़ी गा रही है। पर मुगलकाल में शिवाजी के शौर्य से संस्मरणीय किये वर्ष, अक्षय नहीं रह पाये। शिवाजी द्वारा पूर्व काल ही पुनः उभरा। स्वाभाविकता ब्रिटिश परचक्र भारत को पराजित कर सका। याने मुगलों के आगमन के पूर्व का जो प्रदीर्घकाल भारत की दृष्टि से चिरविजय का रहा वह मानो लुप्त हो गया। अपना भाग्य रहा इसी कारण रामायण–महाभारत से प्रेरणा लेकर शिवाजी का उदय हुआ। उन्होने ‘धर्मो रक्षति रक्षितः’ वचन सत्य है इसकी अनुभूति करा दी। आप और हम मिलकर जब धर्म की रक्षा करेंगे उसी हालत में यह धर्म अपना त्राता होगा – मतलब राष्ट्रीय चारित्र्य के वृक्षपर व्यक्तिगत चारित्र्य की बेल बहार पाती है। महाभारत का यह सुभाषित शाश्वत सत्य कहता है।

“अधिष्ठितो बले धर्मो द्रुमे वल्लीन संश्रिता।’’वृक्ष के आधारपर ही बेल बहर पर होती है और बल के आधार पर धर्म बढता है।

इस्लामपूर्व इतिहास में अलेक्जेंडर दि ग्रेट द्वारा भारत पर कई आक्रमण हुए। उन आक्रमणों को रोककर भारत विजय पथ पर बढ़ता रहा। श्री गुरुजी को इन घटनाओं पर बहुत अभिमान था। तत्कालीन शिक्षा में श्री एम.सी.छागला के साथ चर्चा के समय उन्होने अनुरोध किया था कि छात्रों को यह इस्लामपूर्व इतिहास सिखाया जाए। पर इसी कालखंड को हम अंधकार युग कहते हैं और पारतंत्र्य काल का गुणगौरव करते हैं। अपने स्वातंत्र्य योद्धाओं की गौरवगाथा की बजाय परकीय आक्रमणों का रसपूर्ण वर्णन करते हैं। अपना इतिहास हमने ‘मुसलमानी खंड’ और ‘ब्रिटिश कालखंड’ में समेट लिया है। अपना सम्पन्न भूतकाल था ही नहीं, हम सतत किसी न किसी से मार ही खाते रहे – इस राह में मुगल और बाद में अंग्रेजो के आने के बाद ही प्रगति के पथ पर हमारे कदम बढ़े – याने जिसके प्रति अभिमान हो, ऐसा उज्ज्वल भूतकाल ही हमारा नहीं, जिनका अनुकरण किया जा सके ऐसे महान् पूर्वज नहीं– यही अपने छात्रों को लिखाया जाता रहा। ऐसी स्थिति में उनसे विशेष कर्तृत्व की अपेक्षा कैसे की जा सकती है। (८)

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के चौथे सरसंघचालक स्व. राजेंद्रसिंह जी उपाख्य रज्जु भैया, श्री गुरुजी और छागला जी की जब भेंट हुई, उस समय उपस्थित थे। इस अवसर पर हुए उपरोक्त संवाद उन्होंने लिखकर रखे। श्री गुरुजी ने क्या कहा और छागला जी ने उस पर क्या प्रतिक्रिया दी?, यह

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

जानकारी लिखी है। माननीय रज्जु भैया की ये स्मृतियां पढ़ने पर ध्यान में आता है कि श्री गुरुजी की बात, छागला जी ने मान्य की थी। (६)

श्री गुरुजी ने जीवनभर हिन्दुत्व विचार हेतु भ्रमण किया। भाषण दिये। संवाद किये। इन सारे प्रयासों से "अपना यह हिन्दूराष्ट्र अनादिकाल से मनुष्य, मनुष्य में देवत्व जगाने के लिये ही प्रयास करता रहा है", यह आशय को रखते रहे। याने भारतवर्ष प्राचीन है, इस राष्ट्र का एक जीवनोद्देश्य है, यही वह प्रतिपादित करते रहे। स्वामी विवेकानंद जी के विचार यही आशय व्यक्त करने वाले थे। वर्तमान काल में स्वामी जी एवं श्रीगुरु जी के यह विचार विशेष महत्व रखते है। चारित्र्य का ह्रास बढ़ता गया, पर उसके प्रति खेद तक नहीं - यह आज की भी स्थिति है। इस्लामपूर्व कालखंड में व्यक्तिमात्र में देवत्व को संजोने की हिन्दूराष्ट्र की कोशिश रही थी। इसी काल व्यक्तिगत चारित्र्य निर्मिति पर भी ध्यान था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उदय हुए राष्ट्र का संरक्षण किया जाए इस भूमिका से समूहधर्म की अथवा राष्ट्रीय चारित्र्य की भी निर्मिति होती रही।

"चारित्र्य व्यक्तिगत और राष्ट्रीय" इस विषय को रखते समय श्री गुरुजी ने इस्लामपूर्व भारत का उचित गौरव किया एवं वर्तमान समस्याओं को मात देने के लिये इस भूतकाल का अभ्यास आवश्यक है, यह आग्रहपूर्वक कहा है। इसके अतिरिक्त एक और विशेषतः का उल्लेख भी इसी संदर्भ में करना होगा।

मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण से लेकर याने पिछले हजार - बारहसौ वर्ष अपने इस राष्ट्र को भीषण अंधःकार से गुजरना पड़ा। व्यक्तिगत गुणसंपदा को सामूहिक पुरुषार्थ का जोड़ न मिल पाने से, पारतंत्र्य आया। सामूहिक पुरुषार्थ याने राष्ट्रीय चारित्र्य क्षीण हो जाने से पारतंत्र्य के अंधकार का प्रदीर्घ काल रहा। श्री गुरुजी को यह मीमांसा मान्य थी। पर राष्ट्रीय चारित्र्य व्यक्तिगत चारित्र्य के लिये पूरक रहे, वैकल्पिक ही हो, यह उनका भी निष्कर्ष था। यही उनके प्रतिपादन का दूसरा पहलू था।

"अपनी परम्परा में विशुद्ध वैयक्तिक चारित्र्य को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। स्वार्थ, मदिरा, मदिराक्षी और कंचन की आसक्ति में उलझे व्यक्ति को तत्त्वज्ञ की पदवी हमने नहीं दी। अन्य किसी बात की अपेक्षा विशुद्ध चारित्र्य और संयम ही अपने यहां तत्त्वज्ञ पुरुष का प्रधान लक्षण माना गया है।

परंतु आजकल सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाले लोगों ने यह आदर्श सामने नहीं रखा है। यह सर्वसाधारण मान्यता रूढ़ हो गयी है कि कोई उदार हाथों से धन दे रहा हो, उत्तम भाषण कर रहा हो या किसी सार्वजनिक कार्य के लिये कारावास भुगत चुका हो तो फिर उसका व्यक्तिगत चारित्र्य कितना भी हीन क्यों न हो, वह क्षम्य माना जाय। किन्तु अपनी संस्कृति कहती है कि समाजहित रूपी 'साध्य' प्राप्त करने का 'साधन' जो व्यक्ति है, वह भी विशुद्ध और पवित्र हो। कुछ लोग कहते हैं कि साध्य ही साधन के अच्छे-बुरे होने की कसौटी होती है। आजकल लोगों में इस विचार का आकर्षण अधिक नजर आता है। अधिकतर विचार एवं विचारधाराएं इसी ओर मुड़ती हैं। इसका अर्थ यह है कि सामाजिक परिवर्तन कराने का साधन जो मनुष्य है, उसका स्थान इस विचार पद्धति में गौण है। लक्ष्य प्राप्ति के लिये होनेवाली भागदौड़ में चूँकि यह लक्ष्य राजनीतिक पुरुषों द्वारा ही निर्धारित रहता है, मनुष्य की ओर ध्यान ही नहीं रहता। परिणामतः यह दृश्य दिखायी दे रहा है कि मानव का भयंकर गति से अधःपतन हो रहा है। अपनी संस्कृति की सीख, इससे भिन्न है। राम

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

और शिवाजी हमारी दृष्टि से पूज्य हैं। एकाध व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र में चूँकि अच्छा कार्य कर रहा है तो उसके व्यक्तिगत चारित्र्य के मामूली दोषों पर ध्यान नहीं दिया जाना – यही नहीं तो ऐसी मामूली बाते रहें यह तो स्वाभाविक है – यह दृष्टिकोण अपने मूलभूत सिद्धान्तों के विपरीत है” (१०)

उपरोक्त सभी कुछ अर्थगर्भ है। “End justifies the means”इस वचन का यहाँ उल्लेख है। किसी राजकीय दल या संस्था का कोई कार्यकर्ता होगा तो उस दल या संस्था का उद्देश्य महत्त्व का है यह मानकर उस कार्यकर्ता के चारित्र्य विषयक अधःपतन के प्रति आँखें मूँद लेना इस विचार का समर्थन करना हिन्दू संस्कृति से विसंगत है। कीड़ा लगने पर वह फैलने देर नहीं लगती और दूसरी बात, साधन निकृष्ट और साध्य उत्कृष्ट इस चिंतन में ही अंगभूत दोष है। इस संदर्भ में श्री गुरुजी ने उल्लेख किया है कि हिमवर्षा का प्रभाव घटाने के लिये, यह तो आग मे कूदने जैसा है। ‘जो कोई आग में कूदेगा उसे सर्दी नहीं लगेगी पर वह जीवित भी नहीं रहेगा।’ अर्थात् इसका अर्थ यही है कि साध्य प्राप्ति के संदर्भ में साधन अच्छा या बुरा इसकी ओर आँखे मूँदे रहना, सत्यानाश को ही आमंत्रण देना है।

श्री गुरुजी ने इसी विषय पर कहा है कि,‘‘ ‘क’ को पराजित करने ‘ख’ के नेतागण चाहे जैसे अनाचार, भ्रष्टाचार करते हैं। कोई जब पूछता है तो ‘क’ के लोग इसी मार्ग से चुनाव जीतते हैं। अतः हम भी अधिक भ्रष्टाचार कर सत्ता प्राप्ति का उद्देश्य सम्मुख रख रहे हैं तो इसमें गैर क्या? ऐसा प्रतिप्रश्न किया जाता है।’’ श्री गुरुजी ने विवेचन में कहा है कि,‘‘ Every thing is fair in LoveAnd war इस कहावत का भी उपयोग किया जाता है। सभी दल इस प्रकार भ्रष्टाचार करते हैं और इसी में स्पर्धा करने लगे तो देश में पाप का कहर हो जायेगा। इसी कारण वर्तमान मे व्यक्तिगत चारित्र्य का महत्व है।’’

कुछ राजकीय दल उपयोगितावाद को ढाल कर शीलभ्रष्ट, पर कार्यक्षम व्यक्ति की सराहना करते हैं तो कुछ यह युक्तिवाद करते हैं कि अपने हिन्दू समाज को राक्षसी शत्रू से मुकाबला करना पड़ा और हिन्दू अस्तित्व का प्रश्न उपस्थित हुआ तो हमें भी प्रत्याचार करने चाहियें। अपनी स्त्रियों पर बलात्कार हुए हैं तो हमें भी वैसा ही बदला लेना चाहिये।

श्री गुरुजी को यह युक्तिवाद मान्य नहीं था। कार्यक्षमता के आवरण के पीछे चारित्र्यशून्यता छिपायी नहीं जा सकती। कार्यक्षम व्यक्ति अल्पकाल के लिये ही सराहा जायेगा। पैसे खाने की, स्त्रियोंपर बलात्कार करने की लालच में वह सभी को त्रस्त कर छोड़ेगा। अपनी स्त्रियोंपर हुए बलात्कार का बदला हिन्दू उसी प्रकार ले यह युक्तिवाद तो भीषण है। तो क्या कल्याण के सूबेदार की बहू को सम्मानपूर्वक भेजने वाले शिवाजी या पुर्तगाली किलेदार की पत्नी की आबरू सुरक्षित रहे, इसलिए उसका उचित गौरव करनेवाले चिमाजी आप्पा अपने प्रेरणादायी पुरुष हैं, यह भुला दिया जाय? हिन्दू समाज कुछ उदात्त जीवनमूल्यों की रक्षा के लिये जीवित रहा है। यह मूल्य, यह संस्कृति हमें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। श्री गुरुजी चाहते थे कि ये मूल्य, यह संस्कृति सभी सुरक्षित रहें। इसीलिए उन्होंने व्यक्तिगत चारित्र्य के प्रति अत्यंत सतर्क सचेत रहने का उपदेश किया है।

‘विचारधन’ पुस्तक में, व्यक्तिगत चारित्र्य की शुद्धता के बारे मे श्री गुरुजी का कितना निस्संदिग्ध दृष्टिकोण था, इसके कई उदाहरण मिलते हैं।

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

"भूतकाल में भी अपने यहाँ कई धर्मनिष्ठ और सत्प्रवृत्त नेता हो चुके हैं। फिर भी गत सहस्र वर्षों में हम पर संकट पर संकट छाते रहे। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि व्यक्तिगत अत्यधिक अच्छाई के कारण ही अपना राष्ट्र अनेक बार संकट में पड़ा है। पर इतिहास का यह विश्लेषण यथार्थ नहीं। इन आपत्तियों का वास्तविक कारण यह है कि व्यक्तिगत चारित्र्य जितना ही चारित्र्य का दूसरा पहलू जो राष्ट्रीय चारित्र्य का है, उसका अभाव रहा। हम केवल एकाकी व्यक्ति नहीं, संपूर्ण समाज के घटक हैं, यह ध्यान में रखकर, उस दृष्टि से भी अपने चरित्र का विचार किया जाना चाहिये। जागरूकता उसके प्रति आवश्यक है।'' (११)

श्री गुरुजी व्यक्तिगत चारित्र्य और राष्ट्रीय चरित्र का पृथक-पृथक विचार नहीं करते थे। या यूं कहा जा सकता है कि इन दोनों से एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, यह उनकी श्रद्धा थी। यही श्रद्धा अधिक सुस्पष्ट निर्णायक शब्दो में व्यक्त हुई है। वे कहते हैं –

"It is clear that only when the twinAspect of characterAre manifest, that both the individualAnd the society progressAnd prosper. TheyAre like the twin faces ofA coin - one face having the imprint of national insigniaAnd the other carrying the value. Erosion ofAny one face will render the coin useless" (१२)

सार्वजनिक जीवन में व्यक्तिगत चारित्र्य सर्वार्थ से अनमोल है। श्री गुरुजी ने कई भाषणों में और लेखों में यह कहा है, यह वस्तुस्थिति है। सन् १९४९ में २ दिसंबर को एक पुस्तक की प्रस्तावना उन्होंने लिखी है। नागपुर के सुप्रसिद्ध नागरिक श्री यादवराव जामदार की पुस्तक "वाल्मीकीज् राम एण्ड हिज पॉलिटिक्स" में यह प्रस्तावना है जो व्यक्तिगत चारित्र्य का महत्त्व स्पष्ट करती है।

"मानव का नेतृत्व करनेवाले लोगों में, साररूप में जिन गुणों की आवश्यकता है, और रामराज्य की प्रतिस्थापना की जो पूर्व पीठिका है, वह है पूर्णतया शुद्ध व्यक्तिगत जीवन, समाज के सुख-दुख में समरस होने की क्षमता और परिणामतः स्वयं स्वीकृत आत्मसंयमी जीवन। अजेय सैनिक शौर्य द्वारा भी जनता के क्लेशों को उत्पन्न करनेवाली आक्रमक शक्तियों का दमन करने का चातुर्य, सत्य के प्रति प्रेम, वचनपालन का संकल्प और जनहित सिद्धि हेतु परिपूर्ण आत्मसमर्पण का, उसके लिये फिर कितने ही त्याग की आवश्यकता हो और सबसे महत्त्वपूर्ण बात है समाज के धर्म और संस्कृति पर अटल निष्ठायें तथा अन्य अनेक गुण जो इस महान जीवन में प्रकट हुए हैं उन्हें उन सब लोगों को अपने अंदर निर्माण करने की आवश्यकता है जो हमारे समाज को आज दुःख दरिद्र्य से समृद्धावस्था की ओर तथा अधःपतन से गौरव की ओर ले जाने के लिये प्रस्तुत है, अन्यथा रामराज्य केवल एक अर्थहीन शब्द के रूप में हमारी जिव्हा पर रह जायेगा। वह कल्पना स्वप्न ही रह जायेगी, साकार नहीं होगी।" (१३)

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के स्वयंसेवकों के सम्मुख 'आदर्श कार्यकर्ता' इस विषय को प्रस्तुत करते समय श्री गुरुजी ने चारित्र्य सम्पन्नता का आदर्श व्यक्त किया था।

"हमें उत्तम कार्य करने के लिये जनता का विश्वास पात्र बनना होगा। जनता हम पर तब विश्वास करेगी, जब हमारा विश्वास शुद्ध होगा। हमारा व्यक्तिगत जीवन इतना निष्कलंक रहना चाहिये कि किसी के मन में, स्वप्न में भी हमारे बारे में शंका न उठे। किसी समय हमारा यह सम्पूर्ण समाज शील-चारित्र्य सम्पन्न था। आज भी गाँवों में हमें सच्चरित्रता के उदाहरण दिखायी देते

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

हैं। रास्ता चलते किसी किसान की गाड़ी टूट जाती है, तो वह टूटा हुआ पुर्जा लेकर, निकट के गाँव में दुरुस्ती के लिये चला जाता है। गाड़ी और गाड़ी में लदा सामान वहीं पड़ा रहता है। पर कोई उसे उठाता नहीं। जिसे हम अनपढ़ या देहाती कहते हैं, उनके पास आज भी इतना शील विद्यमान है। उनकी तुलना में हम तथाकथित सुविद्य और शहरी लोग हीन हैं। हमें ध्यान में रखना चाहिये कि सच्चरित्रता के बलपर ही हमारा समाज एवं हमारा यह कार्य उन्नति कर सकता है।'' (१४)

व्यक्तिगत चारित्र्य को काम और कंचन से धोखा होता है, यह कहा जा चुका है। पर इन दोनों प्रकार के मोह से जीवनभर दूर रहना चाहिये यह बात महत्त्व की है। वर्षों तक निष्ठा से सार्वजनिक कार्य करने वाला कार्यकर्ता अहंकार में कहने लगता है कि, “मै उन सभी षड्विकारों से पूरी तरह मुक्त हूँ। काम विकार पर मात करने में मैं सफल रहा हूँ। आगे चलकर भी ऐसा ही यश मैं पाऊँगा।” उसको जैमिनी मुनी की बात ध्यान में रखनी चाहिये।

श्री गुरुजी यह कथा स्मरणपूर्वक सुनाते थे। व्यास मुनी जैमिनी के गुरु। उन्होंने अपने शिष्य याने जैमिनी को एक श्लोक लिखने की सूचना दी, “बलवान इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।” इस श्लोक का अर्थ सीधा सरल था, “इन्द्रियों का प्रभाव इतना जबरदस्त होता है कि बड़े-बड़े विद्वानों को भी वे खींच लेती है।”

जैमिनी मुनी को लगा, मेरी संयमशक्ति असामान्य है। अतः गुरु द्वारा दिये गये इस श्लोक में कुछ परिवर्तन करना चाहिये। और सुधारित श्लोक उन्होने प्रस्तुत किया – “बलवान् इन्द्रियग्रामों विद्वांस नापकर्षति”। अर्थात् “इन्द्रिय बलवन्तर होती है, पर विद्वान व्यक्ति को वे आकृष्ट नहीं कर सकती।”

श्लोक में किया गया परिवर्तन, व्यास मुनि के ध्यान में आ गया। पर वे कुछ नहीं बोले। आगे एक बार जैमिनी, आश्रम में तप कर रहे थे, तूफानी हवाओं के साथ वर्षा होने लगी। उसके रुकने के कोई आसार नहीं थे। तभी एक लावण्यवती तरुणी जो भीगी हुई थी, आश्रम के द्वार पर पहुँची और उसने जैमिनी मुनि से आश्रय माँगा। आश्रम में जल रही धुनीपर कपड़े सुखाने के इरादे से वह धुनी के पास पहुँची। उसी समय तेज हवा के कारण, उसकी साड़ी खुल गयी। उस निर्वस्त्र लावण्यवती की ओर जैमिनी मुनि का ध्यान गया। वे संयम खो बैठे और उन्होंने उस सुन्दरी से अपनी कामवासना पूर्ण करने के लिये कहा। उसने मुनिसे कहा, 'मोह से दूर रहें।' पर मुनि सुनने के लिये तैयार नहीं थे। इस पर उस युवती ने एक शर्त रखी। वह चमत्कारिक थी। उस निर्वस्त्र युवती को कंधे पर लेकर जैमिनी धुनी की तीन प्रदक्षिणा करें। .... कामोन्माद से बेहोश मुनि तैयार हो गये। कंधे पर उस युवती को लेकर प्रदक्षिणा शुरु की। तब उस तरुणी ने मुनि के सिर पर चपत लगाते हुए प्रश्नों की बौछार कर दी। 'विद्वासं नापकर्षति?' 'इन्द्रिय विद्वानों को आकर्षित नहीं करते है ना?' जैमिनी के होश ठिकाने लाने के लिये यह बौछार काफी थी। तरुणी को उसने कंधे से नीचे उतार दिया। जैमिनी ने देखा जिसे कंधे से उतारा वह तरुणी नहीं अपितु साक्षात भगवान व्यास थे। उस पर तो आसमान ही टूट पड़ा। सारा अहंकार धुल गया। श्लोक को उसके मूल रूप में लिखना उसने मान्य किया। (१५)

जिन्होने श्री गुरुजी से यह कथा सुनी होगी उन्हे जीवनभर के लिये वस्तुपाठ मिल गया होगा, इसमें सन्देह नहीं।

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

शुद्ध चारित्र्य के लिये धधकती ध्येयनिष्ठा आवश्यक है। ध्येय मार्गपर जिद के साथ चलते रहना, यह भी व्यक्तिगत चारित्र्य का ही आविष्कार है। इस संदर्भ में श्री गुरुजी का १६४२ के बौद्धिक का उल्लेख करना योग्य होगा –

"कार्य करते समय ध्येय सिद्धि पर अटूट श्रद्धा चाहिये। कोई भी व्यक्ति एक ही समय पर सहस्रों उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सकता। एक ही लक्ष्य सामने रखकर, उसकी प्राप्ति के लिये, अपना सब कुछ न्योछावर करना पड़ता है। श्रद्धा और विश्वास से अपने सामने रखे हुए लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये, निरंतर प्रयत्नशील रहना ही, सफलता की कुंजी है।" (१६)

''चिंतन मनन कर अपने जीवन के ध्येय या साध्य निश्चित किये। अब इन्हें प्राप्त करने के लिये साधनों की निश्चिती की या साधनों की सहायता से अविरल प्रयत्नशील रहा जाये – यह निश्चय महत्त्वपूर्ण है। एकबार मार्ग निश्चित होनेपर उस मार्ग से निर्भय वृत्ति से जाना ही शील – संपन्नता का लक्षण है। रा. स्व. संघ की प्रार्थना में उल्लेख है कि "स्वयं होकर स्वीकार किये हुए कंटकाकीर्ण मार्ग पर कार्यकर्ता को चलना है।"

''अपने सामने स्थित विविध कर्तव्यों में से किसे अग्रक्रम दिया जाये, यह तय करते समय कभी कभी अपने मन में दुविधा उत्पन्न होती है। ऐसे समय पर निर्लेप मन से विचार करना चाहिये। जिसे जीवनध्येय के रूप में स्वीकार किया है, उसे अग्रक्रम देना चाहिये।'' श्री गुरुजी का यह मार्गदर्शन किसी को भी अलौकिक कृतार्थता दिला देगा, इसमें सन्देह नहीं।(१६)

श्री गुरुजी ने संघ स्वयंसेवकों के एवं अन्यान्य श्रोताओं के सम्मुख मार्गदर्शन में उक्त कृति में सुसंगति पर जोर दिया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

"कई बार लोग बोलते समय सहज ढंग से कहते है कि संगठन जरूरी है। कार्य का विस्तार होना ही चाहिये। पर बोलना ही तो सब कुछ नहीं है। वास्तव में ऐसी कोरी बातें करना शब्दों का अपव्यय है। जब तक उन्हें जीवन में नहीं उतारा जाता, तब तक उनका कोई उपयोग नहीं। हमारे कार्य में ऐसी बातों का कोई महत्त्व नहीं। भाषणों में हमारी रुचि नहीं। लगातार बोलते रहने में हमारा विश्वास नहीं। शब्दों के जाल खड़े करना हमें भाता नहीं। फिर भी बोलना तो पड़ता ही है। पर हम निश्चयपूर्वक बोलते हैं और जो बोलते हैं, उसे अपने कार्य द्वारा सजीव रूप देते हैं। अपने कार्यद्वारा जीवन की पद्धति में मोड़ लाते हैं। इसी से हमारे शब्द अर्थ पाते हैं। वह व्यर्थ की अभिव्यक्ति नहीं करते।"(१७)

सार्वजनिक जीवन में प्रसिद्धि मिलती है, नाम होता है। शायद इसी कारण कार्यकर्ता को लगता है कि, 'वह कोई बड़ा व्यक्ति है।' अपनी बड़ाई, डामडौल, अपना गौरव ये सारी बातें उसे आकृष्ट करने लगती हैं। देखते ही देखते, अन्य लोगों से अपने आप को भिन्न मानकर, वह बात दूसरों को जतलाने की कोशिश शुरू होती है। यहीं चारित्र्य भ्रष्टता का प्रारंभ होता है। इस देश के सत्पुरुषों की परम्परा के अनुसार श्री गुरुजी सर्वसाधारण व्यक्ति के समान – उससे एकरूप होकर रहे। उन्होंने स्वयं की बड़ाई कभी नहीं की। उन्हें हिन्दू तत्त्वज्ञान का रहस्य ज्ञात हो चुका था। "पत्ररूप श्री गुरुजी" इस पुस्तक में पहले पत्र में ही उन्होंने किन्हीं घनश्यामदास महतानी को लक्ष्य का अत्यंत यथार्थ उपदेश किया है। "Man does not live by breadAlone, not by the recognition for his work, not by the fulfilment of his desire, but by the word of God."

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

यह वाक्य उस पत्र में है। विचारधन में यह पढ़ने को मिलता है। (१८)

१. “अपनी दृष्टि से अंतःकरण का बड़प्पन, विशुद्धपन एवं उच्च शील यही श्रेष्ठ जीवनमूल्य का सार है। किसी का भी बड़प्पन उसकी बाह्य संपदा पर तय नहीं कर आंतरिक संपदा पर ही निश्चित करते हैं।”

२. “अपना व्यक्तिगत जीवन समाज के लिये समर्पित करने हेतु ही है इस दृष्टि से क्या हम अपने जीवन की ओर देखते हैं? केवल सत्ता एवं संपत्ति के पीछे ही न दौड़ते हुए, हमें सद्‌गुणों को स्वयं में विकसित करना चाहिये, क्या ऐसा हमें लगता है?” श्री गुरुजी की यह प्रश्न मालिका हम सभी के लिये है।

एक बौद्धिक वर्ग में, श्री गुरुजी ने, “मै एक साधारण स्वयंसेवक हूँ” यह विषय अत्यंत उत्कटता से रखा। अपने विवेचन में उन्होने कहा, “लोग मुझसे मिलने आते हैं। दण्डवत करते हैं। हार-गुच्छ देते हैं। सलाह माँगते हैं। मार्गदर्शन की अपेक्षा करते हैं।'' और इसी पर उन्होने भाष्य किया - “ये सारी बातें मन में एक प्रकार से अभिमान करनेवाली हैं। परंतु मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि इस पर गर्व किया जाये। गर्व करने की यदि कोई बात है तो यही है कि ईश्वरीय संकेत और संयोग से मैं संघ का स्वयंसेवक हूँ।”(१९)

सादे रहन-सहन पर उच्च विचार यह चारित्र्य की पहचान है। उन्हीं के द्वारा उल्लेखित “क्रियाशील सत्‌गुण” यह शब्द अत्यंत मूल्यवान हैं, मौलिक हैं। सत्वगुण समाज सेवा के लिये उपयोग में आया तो “क्रियाशील” इस विशेषण का सहचर हो जाता है। सारा समाज मेरा परमेश्वर है और मेरा जीवन याने इस परमेश्वर की पूजा का उपकरण मात्र है, यह निश्चय मूल्यवान है। इस दृष्टि से ही व्यक्तिगत चारित्र्य एवं राष्ट्रीय चारित्र्य एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। उनका पृथक-पृथक विचार नहीं किया जाता, यह पहले ही कहा जा चुका है। श्री गुरुजी अधिक स्वच्छ, निस्संदिग्ध शब्दों में कह चुके हैं - “लोग व्यक्तिशः अच्छे हैं, परंतु सत्तापिपासा और उसका लोभ, अपनी संस्था के प्रति प्रेम तथा अपना प्रभुत्व अबाधित रखने के लिये, सब प्रकार की हीन प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं। तब उनके व्यक्तिशः अच्छे होने का कोई मतलब नहीं रहता”(२०)

संत कबीर के दोहे का आधार लेकर, श्री गुरुजी ने “जनसाधारण से आत्मीयता का व्यवहार किया जाय”, यह मार्गदर्शन किया है।

''ऊँचा भया सो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।''

हम दूसरों से अलग हैं यह नहीं मानते हुए, दूसरों पर भी ऐसी छाप नहीं डालते हुए सभी से हिल मिलकर रहें, सारे सद्‌गुण समाज के चरणों में अर्पित करें, इसी में अपने जीवन की सार्थकता है।”(२१)

समाज का कोई भी घटक उपेक्षित नहीं, यह धारणा पक्की होने पर सभी के साथ मिलनसारिता, आत्मीयता से व्यवहार का निश्चय होनेपर, श्रेष्ठ मराठी कवि मोरोपंत द्वारा महान व्यक्ति का किया गया वर्णन, अपने व्यवहार को भी लागू होता। उनके अनुसार महान व्यक्ति के पास सभी को स्थान है। कोई वस्तु कम महत्त्व की है इसलिये उसका त्याग नहीं किया जाता। आत्मीयता से उसे रखा जाता है।

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

नागपुर महानगर पालिका के नवनिर्वाचित नगरसेवकों के सम्मुख दि. १५ अप्रैल १९६९ के दिन श्री गुरुजी का भाषण हुआ। उन्होंने नगरसेवकों से अपेक्षा की कि झोपड़पट्टी में याने दरिद्र रेखा के नीचे किसी भाँति निर्वाह करने वाले समाज के घटकों के प्रति नगरसेवक विशेष प्रयास करें। उनके प्रति पलड़ा भारी रहना चाहिये। श्री गुरुजी का आग्रह था – ''ये लोग गंदे नाले का पानी पीते हैं। धूप में, बरसात में, खुले में रहते हैं। सरकार की कुछ योजनाएँ उनके लिये हैं। अब अधिक ध्यान देकर इस दिशा में काम करना लाभजनक होगा। टूटी-फूटी कुटियों में रहने वालों के लिये योजना बनाकर उनके जीवन में सुधार लाना, अपना कर्तव्य है।'' (२२)

''बहुत समय से मेरे हृदय में इस बात का अतीव दुःख है कि हमारे यहाँ सड़कों के किनारे कीचड़ में लोग पड़े रहते हैं। हम लोग उनके पास से चले जाते हैं। परंतु क्या कभी हमारे मन में यह विचार आता है कि उनके रहने के लिये, गरमी और धूप से बचने के लिये थोड़ा-बहुत आश्रय बना दें? क्या ऐसा नहीं लगता कि हम ऐसी स्थिति उत्पन्न करने का प्रयत्न करें, जिससे वे अपने परिश्रम से छोटा मोटा कामधंदा कर सकें।" जातिप्रथा के कारण जिन पर सैकड़ों वर्ष अत्याचार हुए। उन तथाकथित अस्पृश्य भाई-बहनों के बारे में हमारे मन में अपनत्व रहना चाहिये। श्री गुरुजी ने सवर्णों को विशेष रूप से याद दिलायी है कि तथाकथित अस्पृश्य ही राष्ट्र के मुक्ति संघर्ष में अग्रसर रहे हैं। महाराणा प्रताप, गुरु गोविंदसिंह, छत्रपति शिवाजी इन वीर पुरुषों का साथ देने वाले पराक्रमी कट्टर योद्धाओं में तथाकथित अस्पृश्य ही आगे थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उनका कार्य अद्वितीय रहा है। "धर्म के नाम पर शेष समाज के हाथों सभी प्रकार का अपमान तथा उत्पीड़न सहकर भी इन बंधुओं ने धर्म परिवर्तन के प्रलोभनों का दृढ़तापूर्वक प्रतिकार किया है। देश विभाजन के दौर में बंगाल के लाखों नामशूद्रों ने (अछूत), इस्लाम ग्रहण कर अपने प्राण बचाने के स्थान पर, अवर्णनीय कष्ट सहन करना, अधिक पसंद किया। बाद में उन्हें भारत के सीमा क्षेत्रो में ही हिन्दू के रूप में अप्रवासी बनना पड़ा।" (२३) ऐसे बंधुओं के प्रति कार्यकर्ताओं के मन में स्नेह रहना चाहिये।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर लगा पहला प्रतिबंध समाप्त हुआ। श्री गुरुजी का देशव्यापी प्रवास प्रारंभ हुआ। स्थान-स्थान पर उनके भव्य सार्वजनिक सत्कार हुए। इन्हें उत्तर देते समय उन्होंने संघ की भूमिका रखने का अवसर पाया। भारत की राजधानी याने नई दिल्ली में दि. २१ अगस्त १९४९ के दिन, अपने सत्कार के उत्तर में उन्होंने जो कहा वह संघ की भूमिका स्पष्ट करनेवाला तो था ही, राष्ट्रीय चारित्र्य की कल्पना भी विषद करनेवाला था। प्रथम उन्होंने भ्रष्टाचार के बढ़ते स्वरूप की चर्चा की। इस भ्रष्टाचार की जड़ स्वार्थ में है, यह बताया। सम्पूर्ण भारतवर्ष मेरा है। इस देश की संस्कृति और इस देश में रहनेवाला समाज इन से अटूट नाता है, यह संस्कार करने की आवश्यकता व्यक्त की। समाज के सुखदुःख पर मेरा सुखदुःख निर्भर है, यह वह समझ सकेगा। फिर गैरव्यवहार नहीं होता। भ्रष्टाचार नहीं होगा। इस भाँति विषय रखकर उन्होंने कहा-

"राष्ट्रकार्य की इस नींव को समझकर भारत के करोड़ों बांधवों में यह राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय चारित्र्य निर्माण करने का कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ करता है। 'राष्ट्रीय चारित्र्य का अर्थ है कि मेरे अंदर यह भाव हो कि मैं मरकर भी, भारत की प्रतिष्ठा को कम नहीं होने दूँगा इसमें पक्षभिनिवेश को कोई स्थान नहीं। पक्ष राष्ट्र से बड़ा नहीं है। व्यक्ति के मान-सम्मान के लिये कोई स्थान नहीं है क्योंकि व्यक्ति राष्ट्र का एक छोटासा घटक है। यहाँ तो एकही भावना हो, वही एकशील हो कि मैं राष्ट्र की सेवा करुँगा। व्यक्ति या पक्ष के लिये कार्य करना राष्ट्रीय चारित्र्य का

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

द्योतक नहीं है। अपने अंतःकरण की विशालता का ज्ञान कर के हम यह निश्चय करें कि देश में एक भी भूखा, निर्वस्त्र अथवा निर्वासित नहीं रहेगा। प्रत्येक सुखी, सम्पन्न व शिक्षित है, यही राष्ट्रीय चारित्र्य का अर्थ है।" (२४)

'विचारधन' में राष्ट्रीय चारित्र्य का विवेचन है। "व्यक्तिगत चारित्र्य इतना ही राष्ट्रीय चारित्र्य यह दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है। उसका अभाव ही राष्ट्र पर आयी आपत्ति का वास्तविक कारण है। हम अकेले नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज के घटक हैं यह ध्यान में रखकर ही अपने चारित्र्य का विचार करना चाहिये ....समाज ही जीवित नहीं रहा तो व्यक्तिगत अच्छाइयाँ व चारित्र्य भी जंगली आक्रमकों के पैरों तले कुचले जाते हैं। अपने देश के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं।" (२५)

श्री गुरुजी ने इस संदर्भ में गुजरात के राजा कर्ण और उसके प्रधानमंत्री की कथा बतायी। राजा कर्ण व्यक्तिगत चारित्र्य के मामले में ढीला था। अपने ही सरदार की पत्नी को वह भगाकर ले आया। उससे व्यभिचार किया। प्रधानमंत्री वेदविद्या सम्पन्न था। अनेक शास्त्र एवं कलाओं में निपुण था। स्वाभाविकतया वह राजा से नाराज हो गया। क्रोध में आकर उसने सीधे दिल्ली के सुल्तान से सम्पर्क किया। गुजरात पर चढ़ाई के लिये उसे प्रेरणा दी। सारा सहयोग दिया। परिणाम भीषण रहा। व्यक्तिगत चारित्र्य में दुर्बल रहा राजा मारा गया। गुजरात के मंदिर नष्ट हुए। महिलाएँ भ्रष्ट हुईं। यही नहीं तो दिल्ली के सुल्तान का दक्षिण विजय का मार्ग खुल गया। वेदविद्या संपन्न प्रधानमंत्री के घर पर हल चला। उसके देवघर में कसाईघर प्रारंभ हुआ।

राजा का व्यक्तिगत चारित्र्य कलंकित, तो प्रधानमंत्री का राष्ट्रीय चारित्र्य दुर्बल, आखिर राष्ट्र का सर्वस्व छीना गया। राष्ट्र के इतिहास में राष्ट्रीय चारित्र्य दुर्बल रहने से बारबार दुरवस्था रही, यही निष्कर्ष श्री गुरुजी का रहा। अब स्वातंत्र्य मिलने के बाद तो भी राष्ट्रीय चारित्र्य को प्रयत्नपूर्वक बनाये रखना होगा। "राष्ट्र अपना आराध्य देवता है। केवल पूजा के भाव से ही इस उपास्य देवता के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण करना है, सेवा का परिश्रमिक पाने का प्रश्न ही कहाँ उत्पन्न होता है?" श्री गुरुजी का उत्तर गर्भ प्रश्न भी बड़ा मार्मिक है।

गुजरात का राजा कर्ण और उसके प्रधानमंत्री का किस्सा जिस भाषण में है, वहीं राजा संभाजी और खंडोबल्लाळ का भी किस्सा श्रोताओं के लिये है। कुछ पूर्वाग्रह के कारण संभाजी राजा ने खंडोबल्लाळ के पिता को हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया था। खंडोबल्लाळ ने शांति से यह अपमान निगल लिया। मदिरा, मदिराक्षी की धुन में राजा ने खंडोजी की बहन की ओर पापी नजर दौड़ायी। खंडोबल्लाळ ने बहन को शीलरक्षण के लिए आत्महत्या करने की अनुमति दी। पर संभाजी के प्रति राजनिष्ठा छोड़ी नहीं। आखिर संभाजी राजे हिन्दू एकता के, हिन्दवी स्वराज्य के प्रतीक थे। हिन्दू समाज उनके नेतृत्व में एकत्र होकर औरंगजेब को चुनौती दे रहा था। यह सब समझकर खण्डोबल्लाळ ने कैद से राजा को छुड़ाने की कोशिश की। दुर्दैव से औरंगजेब ने संभाजी को बेहाल कर मार डाला। फिर राजाराम सत्ताधीश हुए। खंडोबल्लाळ ने अब अपनी निष्ठा उनके प्रति अर्पित की। अंत में हिन्दवी स्वराज्य के लिये खंडोबल्लाळ ने अपने प्राणों की आहुति दी। इतिहास का प्रवाह बदलने का अलौलिक यज्ञ कर्म किया।

कहाँ गुजरात का राजा कर्ण का प्रधानमंत्री और कहाँ खंडोबल्लाळ। वह प्रधानमंत्री राष्ट्रीय चारित्र्य में कमजोर था। इसी कारण अहिन्दुओं के पाशवी आक्रमण का कारण बना। उलटे

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

खंडोबल्लाळ ने सारे अपमान निगलकर, राष्ट्र के लिये सर्वस्व झोंक दिया। राष्ट्रीय चारित्र्य का उत्तुंग आदर्श अजरामर किया और राष्ट्र के इतिहास में क्रांति की।

श्री गुरुजी की एक व्यथा थी। डॉक्टर हेडगेवार भी इसी से चिन्तित थे। अपने हिन्दू समाज में एक-एक व्यक्ति स्वयं तक का ही विचार करता है। "मै ठीक हूँ और मेरा परिवार ठीक रहे", इस छोटे से विश्व में वह रमा रहता है। समाज के प्रति, देश के प्रति उसका कोई लेना देना नहीं रहता। इसी कारण राष्ट्र पर छाया संकट गहराता जाता है। डॉक्टर हेडगेवार ऐसे लोगों के बारे में कहते थे, "देखो वह कितना सज्जन है। रोज नियत समय पर दफ्तर जाता है। समय पर घर आता है। बालबच्चों, पत्नी से बातें करता है। भोजन करता है। सो जाता है। कभी किसी के बीच नहीं रहता। पच्चीस वर्ष से यहाँ रहता है। पर अपने पड़ोस में कौन रहता है, वह नहीं जानता। पड़ोसियों को भी उसकी कोई जानकारी नहीं। ऐसे निरुपद्रवी, सारे लोग शायद ही कहीं मिलें। और फिर डॉक्टर जी समाज के सुखदुःख के प्रति उदासीन रहनेवाले और समाज का अपमान एवं अवमान चुपचाप सहन करने वालों को कड़े शब्दों में फटकारते। वे कहते, "समाज की सार्वजनिक दुरावस्था के लिये यही मनोवृत्ति कारणीभूत है।"

कुछ लोग अपने परिवार के परे जरूर जाते हैं पर जाति, उपजाति, पंथ-सम्प्रदाय, प्रश्न के कोष में ही स्वयं को उलझा लेते हैं। वर्तमान मे तो जाति-उपजाति की भरमार है। किसी ने कहा है कि हिन्दू समाज मानों किराना भंडार हो गया है। किराना भंडार में हींग, हल्दी, धनिया, जीरा, नमक आदि मिलता है। पर कभी कोई दुकान मालिक से कहे कि, 'दो किलो किराना दो, तो दुकानदार उसे पागल करार देगा। नाम 'किराना भंडार' पर किराना छोड़कर बाकी सब मिलता है। अपने समाज का नाम है 'हिन्दू समाज'? पर यहाँ एक ब्राम्हण है, दूसरा महार, तीसरा लिंगायत तो चौथा वक्कलिग। जैसे किराणा दुकान में किराना नहीं वैसे ही हिन्दू समाज में हिन्दू नहीं। जाति-उपजाति में उलझे हिन्दू मात्र को 'राष्ट्रीय' कैसे कहा जाय!

पंथ-सम्प्रदाय में उलझे लोगों की यह कहानी भी अलग नहीं। ये पंथ, ये सम्प्रदाय हिन्दू के वैविध्य के आविष्कार हैं, प्रतिनिधि हैं। "एकं सत्, विप्राः बहुधा वदन्ति" इस प्राचीन मंत्र के जीवित प्रमाण हैं। पर कोई साम्प्रदायिक तो कोई पंथाभिमानी हमारा पंथ या सम्प्रदाय हिन्दूधर्म से भी प्राचीन है यह अभिमान। श्री गुरुजी का इस संबंध में भाष्य अर्थपूर्ण है -

"समाज को जागृत और सुसंगठित करने की दृष्टि से भूतकाल में, देश के विभिन्न भागों में अनेक प्रयत्न हुए। इन आन्दोलनों के प्रवर्तकों ने सुसंगठित एवं सामर्थ्यवान समाज बनाने की दृष्टि से कार्य का आरंभ किया। पर धीरे धीरे परिस्थिति में परिवर्तन हुआ और जिन तात्कालिक कारणों से ये आन्दोलन प्रारंभ हुए, वे कारण नहीं रहने पर प्राणभूत प्रेरणा नहीं रहने से, उनका बाह्य आकर्षणमात्र रहा। आगे चलकर परिणाम यह रहा कि आज के स्वार्थमय वातावरण में, परस्पर से पूरी तरह अलग, शत्रुत्व करने वाले भी अनेक छोटे-बड़े पंथ बने।"

मतलब, केवल वैयक्तिक परिवार की कक्षा में रमना या जाति उपजाति या पंथ-सम्प्रदाय की परिधि में आनंद मानना, राष्ट्रीय चारित्र्य को इससे हानि पहुँचती है। रशिया, चीन आदि देशों का गत शतक का इतिहास देखते ध्यान में आता है कि कुछ कर्तृत्वसम्पन्न व्यक्तियों को प्रथम शक्तिशाली गुट बनने का मोह हो सकता है। ऐसे लोग दावा करते हैं कि समाज परिवर्तन के लिये 'वे ऐसा गुट निर्माण कर रहे हैं।' "पर प्रत्यक्ष में यह निजी सेना का रूप लेता है। राष्ट्र के

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

अप्रतिशत एवं समृद्ध विकास के मार्ग में अनेक भयानक खतरे उत्पन्न होते हैं।” श्री गुरुजी का यह भाष्य अक्षरशः सच रहा है। जर्मनी इटली, रशिया, चीन आदि देशो में मुट्ठीभर लोगों ने सारे समाज को जोता। हुकुमशाही लाद दी जो कोई विरोध करेगा, चुनौती देगा उसे कारावास में ठूँसा। जीवन बरबाद कर दिया। रसिया का घटनाक्रम तो ताजा है। वहाँ कम्युनिस्टों ने जुल्म-जबरदस्ती कर क्रूरता की परिसीमा ही पार की। एक कृत्रिम महासत्ता को जन्म दिया, पर सात-साढ़ेसात दशक में यह ढाँचा ढह गया। सोवियत संघ का अस्त हुआ। केवल रशिया का ही नहीं तो पूर्व यूरोप का, मध्य रशिया का जनजीवन बिखर गया। स्वामी विवेकानन्द ने भी minority terrorism पर जमकर टीका की है। याने किसी व्यक्ति द्वारा अपने परिवार में ही रमकर देशहित के प्रति दुर्लक्ष करना, जाति-उपजाति या पंथ विशेष का अतिरेकी अभिनिवेश रखना, राष्ट्रीय हित संबंधो को चोट पहुँचाना, राष्ट्रीय चारित्र्य पर कुठाराघात करने वाला है। समाज में रहते प्रथम एक शक्तिशाली गुट बनाकर राष्ट्रपर हिंसक तानाशाही लादना यह कृति राष्ट्रीय चारित्र्य और मानवता के लिये घातक है।

राष्ट्रीय चारित्र्य का नुकसान करनेवाला या राष्ट्रीय चारित्र्य के प्रति ही आशंका निर्माण करनेवाला एक और पहलू है, जिसका उल्लेख करना होगा। अपने देश को राजकीय स्वातंत्र्य मिलने के बाद चीन का आक्रमण होने तक कुछ नेता कल्पना विलास में थे “सारा विश्व एक होना चाहिये। राष्ट्र की दीवारें ढह गयी हैं, ‘स्व-अस्मिता’ आदि शब्द अब अप्रासंगिक हो गये हैं, अब सेना की जरूरत ही क्या? यह प्रश्न करने तक कुछ आगे बढ़े। यह युक्तिवाद करनेवाले हिन्दू तत्त्वज्ञान का आधार ले रहे थे। ‘‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’’, “विश्व बंधुत्व”, “यह विश्व ही मेरा घर” आदि विधान और संकल्पना सम्पूर्ण ब्रह्मांड को घेर लेते हैं। इस विशाल और व्यापक घेरे में राष्ट्र नामक छोटी छोटी परिधि के प्रति प्रेम रखना क्या माने रखता है? यह उत्तरगर्भ प्रश्न स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद के प्रथम दशक में उसके नेताओ को प्रिय था।

भारत स्वतंत्र हुआ उसके कुछ ही वर्ष पूर्व दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ था। स्वाभाविकतया हिटलर, मुसोलिनी, तोजो, असफल रहे। इस त्रिमूर्ति के पाप राष्ट्रवादियों के मत्थे मढ़े गये। इस में कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्रवाद का आसुरी, आक्रमक आविष्कार दुनिया को संत्रस्त करने वाला रहा। इस पृष्ठभूमि में एशिया, अफ्रीका एवं लेटिन अमेरिका के नवजात राष्ट्र जर्मनी, इटली, जापान से युद्धालु एवं साम्राज्यवादी राष्ट्रों का आदर्श अपने सामने नहीं रखें, यह स्वर अपने यहाँ के नेता अलापने लगे। वस्तुतः हिन्दू राष्ट्र के प्राचीन इतिहास में पाशवी शक्ति के बलपर अपना आधिपत्य प्रस्थापित करने की कल्पना भी किसी के मन में नहीं थी। ऐसी स्थिति में दुनिया के राष्ट्रवाद का राक्षसी आविष्कार देखकर हम भी अपने देश के राष्ट्रीय स्वभाव पर आशंका करें, यह गैर है यह श्री गुरुजी की भूमिका थी।

जो लोग वैश्विक एकात्मता का कौतुक करते थे, प्रत्यक्ष व्यवहार में वे अत्यंत संकीर्ण एवं क्षुद्रता का परिचय देते थे। ऐसे लोगों को क्या वाचाविर या शब्दवीर कहना ही क्या योग्य नहीं?

एक ओर थे ऐसे समाजघटक जो अपने तक, जाति तक या किसी सम्प्रदाय् तक का ही विचार करते थे, तो दूसरी ओर एकदम वैश्विक विचार करनेवाले या मानव जाति की चिंता करने वाले भोले भाले लोग ! इन दोनों के बीच सुवर्ण मध्य याने राष्ट्र का विचार यह दृष्टिकोण श्री गुरुजी को मान्य था। उनकी यह भूमिका समझनी होगी।

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

"एकबार एक स्थान के एक विख्यात वकील ने मुझसे कहा 'समस्त मानव जाति का विचार मुझ से नहीं होता। फिर मैं अपने परिवार का ही विचार क्यों नहीं करूँ?" मैने उनसे कहा, 'हमने केवल ब्रह्म सत्यं, जगत मिथ्या' इतना ही विचार सामने रखा। परिणाम यह हुआ कि अपने राष्ट्र का वैभव और सुख धूल में मिल गया। हम केवल अपने व्यक्तिगत और परिवारिक जीवन में ही मग्न रहे। उस काल में भी देश की वहीं हालत रही। इसी कारण सिरे के ये विचार अतिव्याप्ति और अव्याप्ति अलग रखकर, मध्यम मार्ग अपनाना चाहिये। इन दोनों का सुवर्णमध्य 'राष्ट्र' हमारा लक्ष्य हो। इसी से मन का परिपूर्ण संतुलन होता है। सर्वस्वार्पण करने की प्रेरणा देनेवाला कोई एकमेव आदर्श होना तो वह राष्ट्र सेवा ही है। आदर्श और व्यवहार का उत्तम मेल यही आदर्श कर सकता है"

राष्ट्र पर संकट आने पर, उसका प्रतिकार करने सर्वसाधारण नागरिक सर्वस्व का समर्पण करता है - यह उदाहरण हमारे परिचय के हैं। इस में से राष्ट्रीय चारित्र्य ही प्रकट होता है, इस में सन्देह नहीं। मतलब लोकशाही, समाजवाद, सेक्युलरिजम आदि तत्त्वों की रक्षा के लिये नहीं अपितु राष्ट्र की रक्षा के लिये अपने पास का सबकुछ अर्पित करने की मानसिकता होती है। वह सराहनीय ही है। पर केवल संकट छानेपर ही राष्ट्रीय चारित्र्य प्रकट होता है। अन्य समय वह अपने ही कोष में रमता है। नहीं तो संकुचित स्वार्थ के लिये राष्ट्रीय हित संबंधो को खतरा पहुँचाने के लिये तैयार तक होता है। यह स्थिति चिंता का विषय है। चीन द्वारा किये गये आक्रमण के समय यह नजर आया। अहंकार की बजाय वयंकार का अनुभव हुआ। पर संकट के बादल छटते ही पुनः पुरानी लीक पर हम थे। इस संबंध में श्री गुरुजी का विवेचन मार्मिक है-

"अपने पर आये संकट के समय भी पुरानी आदतें उभरती दिखायी दीं। फतेहसिंह द्वारा आमरण उपवास की और अंततः आत्माहुति की धमकी दी जाने के कारण पंजाबी सूबे की माँग जो उठी थी, भले ही वह पाकिस्तान के आक्रमण के कारण उन्होंने वापस ली पर युद्धबंदी घोषित होते ही पुराने विवाद उठाये गये। मातृभूमि की रक्षार्थ वीर पुरुषों के बहे रक्त के दाग पूरी तरह सूखे नहीं थे कि पंजाब पुनः आन्तरिक संघर्ष में फँसा"।

राष्ट्रीय एकात्मता की भावना कुछ काल तक ही नहीं रहे, नैमित्तिक नहीं होकर, नित्य की हो। स्थायी हो। अपने देश में १८५७ का स्वातंत्र्य संग्राम असफल रहा क्योंकि प्रारंभ में मिली सफलता से सैनिक अल्प संतुष्ट बने। तात्या टोपे, नाना साहेब आदि सम्माननीय सेनानियों का अपवाद छोड दें तो अन्य शिथिल पड़ गये। फिर पुराने झगड़ों का उफान रहा। अंग्रेजों ने इस स्थिति का लाभ उठाया। इसी कारण राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय एकात्मता की जड़ें, शत्रु के आक्रमण के समय होनेवाली समाज जागृति की तात्कालिक भावना की जगह गहरी और विधायक मामलों में पहुँचे" श्री गुरुजी का यह निष्कर्ष शाश्वत महत्त्व का है।

सन १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया सारा भारत जाग उठा और एकात्मता की, चैतन्य की लहर दौड़ पड़ी। राष्ट्रीय चारित्र्य का यह तेजस्वी आविष्कार स्वातंत्र्यवीर सावरकर की भाँति श्री गुरुजी को धन्यता दे गया। इस युद्ध के समय गुरुजी ने अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला में जो भाषण किये वे अत्यंत ओजपूर्ण थे। उन्होंने कहा, गत हजार बारह सौ वर्षो में विजयनगर के हरिहर व बुक्क, महाराष्ट्र के राजा शिवाजी, पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह इन पराक्रमी सेनानियों ने यवनों को पराजित किया। हिन्दू पुरुषार्थ का दर्शन कराया। पर सारा देश रोष में एकत्र आकर युद्ध के लिये खड़ा हुआ हो, ऐसा नहीं रहा, पर १९६५ में यह चमत्कार हुआ।

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

''समग्र भारत काश्मीर से कन्याकुमारी तक एक-दूसरे के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ा हो, ऐसी स्थिति शायद पिछले हजार-बारह सौ वर्षों में कभी देखने को नहीं मिली। यह सौभाग्य इस बार अपने को प्राप्त हुआ है। यह बात हम पिछले चालीस वर्षों से कहते आ रहे हैं कि आसेतु हिमाचल समग्र समाज अपना एक विराट पुरुष की भाँति खड़ा है। .....यानी ईश्वर की कृपा से यह सौभाग्यपूर्ण अवसर अपने को देखने के लिये मिला है। इसका हम सब लोगों को गर्व होना चाहिये।''

राष्ट्रीय चारित्र्य का यह आविष्कार नित्य का हो, भारतीय नागरिकों का वह स्थायी स्वभाव हो। श्री गुरुजी की यही आंतरिक इच्छा थी। इसी लिये सन १९७१ की ७ दिसंबर की एक सभा में विजयवाड़ा में हेमंत सम्मेलन में उन्होंने कहा-

''यदि देश में उद्योगशीलता का, उत्पादन क्षमता का, अपनी सेना के लिये आवश्यक सभी प्रकार की क्षति पूर्ति का और विगत बारह सौ वर्ष के इस तरह की आक्रमण की शृंखला को सदा सर्वदा के लिये समाप्त करने का प्रचंड विजयशाली वायुमंडल निर्माण करता है, समाज में तद्नुसार एक मानसिक क्रांति लाने की नितांत आवश्यकता है। समाज का ऐसा हृदयपरिवर्तन होना चाहिये, जिसमें से वर्तमान व्यक्तिवाद, जातिवाद, पंरपरावाद, भाषावाद आदि भिन्नभिन्न प्रकार के मुद्दों के ईर्ष्यायुक्त स्वार्थ के झगड़े समाप्त हों और सबका ध्यान ऐसे क्षुद्र स्वार्थ से हटाकर राष्ट्रहित की ओर लगाया जा सके।''

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्म ही राष्ट्र के प्रति एकात्मता की भावना में हुआ है। इस राष्ट्र में भिन्न भिन्न जाति-उपजातियाँ हैं। भाषागट हैं। अलग-अलग पंथ उपपंथ हैं। पर इस सारी विविधता में एकता का सूत्र है। यह शाश्वत है। स्वामी विवेकानन्द के समान ही श्री गुरुजी भी शिवमहिम्न स्तोत्र की दो पंक्तिया बारबार उद्धृत करते थे -

'रुचीणां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिल नाना पथजुषाम्।
नृणामेको गम्य स्त्वमसि पयसामर्णवमिव।।'

पुष्पदंत गंधर्व ने भगवान् शंकर को लक्ष्य कर इस श्लोक में कहा है - 'हर कोई अपनी रुचि के अनुसार सरल या जटिलमार्ग से तुम्हारी पूजा करता है। पर नदियों का पानी आखिर समुद्र में ही जा मिलता है। वैसी यह पूजा भी आखिर तुम्हारे चरणों में ही विलीन होती है।'

सन् १९६५ और बाद के १९७१ के युद्ध के समय भारत की स्वाभाविक एकता ही उत्कटता से प्रगट हुई। श्री गुरुजी का भाष्य कितना अर्थगर्भ है - ''इस समाज का जो एकात्मता का भाव इस लड़ाई में देखने को मिला, वह इसकी सहज स्थिति है। वह अविचल बनाये रखनी चाहिये।''

एकात्मता की इस सहज स्थिति को संकुचित जातीय या पंथीय स्वार्थ के कारण खतरा हो सकता है। व्यक्तिगत मान अपमान से नुकसान पहुँच सकता है। अतः सभी नागरिकों को विवेक से व्यवहार करना चाहिये। अन्याय होने पर भी राष्ट्रीय हित संबंधो को बाधा नहीं पहुँचे यह दक्षता लेनी चाहिये। ''हम दिन चार रहें या न रहें, तेरा वैभव अमर रहे।'' यह पंक्ति इसी उपदेश से युक्त है। दुर्दैव से हमारे बांधव विवेक के अभाव में छोटी निष्ठाओं की शरण में जाते हैं।

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

व्यक्तिगत तथा राष्ट्रीय चारित्र्य सुदृढ़ हो, यह आज की आवश्यकता है। भारत का स्वातंत्र्य अजरामर करने के लिये तो चारित्र्य के इन दोनों पहलुओं पर बारीक नजर रखी जानी चाहिये। ''विचारधन'' पुस्तक में चारित्र्य निर्मिति की तर्कशुद्ध मीमांसा पढ़ने के लिये लिखी है।

''मानसशास्त्री कहते हैं कि किसी आदर्श के अनुसार व्यक्ति का चारित्र्य बनाने के लिये, तीन बातें जरूरी हैं। जिस आदर्श का संस्कार उत्पन्न करना है, उसका नित्य चिंतन, उसी आदर्श पर अनन्यनिष्ठा रखनेवाले का सतत् सहवास और उस आदर्श के अनुरूप कार्यक्रम में शरीर को व्यस्त रखना।''

अपनी मातृभूमि की पूजा, दूसरे शब्दों में जिस भारत में हमने जन्म लिया है, उसके पुनरुत्थान का ध्येय आदि शब्दों में अपना आदर्श रखा जा सकता है। यह आदर्श अत्यंत उदात्त, व्यापक एवं भव्यदिव्य है। इस आदर्श की प्राप्ति के लिये सतत् सामूहिक उपक्रम में जुटे रहना याने अपनी नौकरी, व्यवसाय, परिवार का दायित्व सम्हालकर इस विधायक उपक्रम में रममाण होना, यही चारित्र्य निर्माण करने का शास्वत मार्ग है।

इस आदर्श को पाने का लक्ष्य या उद्दिष्ट निश्चित होते ही, स्वार्थ को मात दी जा सकती है। स्वातंत्र्यवीर सावरकर अत्यंत समर्पक शब्दों में कह गये हैं कि 'यह स्वार्थ नष्ट कर हम कृतार्थ हुए हैं।' श्री गुरुजी के अनुसार, ''लोगों के सामने एक उच्च और पवित्र ध्येय रहना चाहिये। यह ऐसा हो कि जिसका स्पंदन स्वाभाविकतः उनके हृदय में हो। उनके रक्त में वह घुला हुआ हो और जो पीढ़ी दरपीढ़ी चला आ रहा है। ऐसा हो पाया तो सड़क पर चल रहा व्यक्ति भी स्वयं में श्रद्धा व चारित्र्य का उदय अनुभव करेगा। अपने पवित्र हिन्दू राष्ट्र का वैभव व श्रेष्ठत्व का पुनः निर्माण ही वह स्फूर्तिदायी ध्येय है।''

हिन्दू राष्ट्र के पुनरुत्थान का लक्ष्य एक-एक समाज घटक को निरपेक्ष भक्ति सिखायेगा। श्री गुरुजी द्वारा भक्त का किया गया विवेचन उद्धृत करने योग्य है -

''अपनी मातृभूमि साक्षात् जगज्जननी है। यह उच्च भावना हमेशा बनी रहे यह हमारा कर्तव्य है। यह भक्ति किस प्रकार प्रगट की जाये? पूजा, धूपदीप, मंत्रोच्चार से पूजा करना यह हुआ हमेशा का औपचारिक तरीका। यह तो हर कोई करता ही है। धार्मिक भक्ति भाव से वह सब कुछ किया जाता ही है। देशभर घूमकर तीर्थयात्रा की जाती है। धर्म के बंधनो को पाला जाता है। प्रार्थना स्तोत्र कहे जाते हैं। फूल चढ़ाये जाते हैं। पवित्र नदियों में स्नान किया जाता है। पर यह सब कुछ व्यक्तिगत पुण्य कमाने हेतु किया जाता है। एक दृष्टि से यह भक्ति का निष्क्रिय रूप है। मातृभूमि के कण-कण का स्वातंत्र्य एवं सम्मान की रक्षा के लिये सर्वस्वार्पण करने की मानसिक सिद्धता का राष्ट्रीय जीवन में होनेवाला प्रत्यक्ष आविष्कार यह भक्ति सक्रिय रूप है। आज के व्यावहारिक जगत् में भक्ति के इस सक्रिय रूप का महत्त्व है। ऐसी भक्ति-भावना से युक्त अंतःकरण, अपनी मातृभूमि का थोड़ा सा भी अपमान सहन नहीं करेगा। यह भक्ति फिर इतनी उग्र हो जाती है कि अधिक्षेप करनेवाले को पुनः ऐसा कुछ करने का अवसर ही नहीं रहे। इसी कारण उसे जड़ से उखाड़ने तक वह चुपचाप नहीं रहता। भूतकाल के सारे अपमान एवं अवमान धो डालने के लिये सात्विक क्रोध से भरा मन, जलता रहता है।

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

''क्रियाशील सत्त्वगुण'' इस शब्द प्रयोग का स्मरण यहाँ होता है। भारत के प्राचीन इस्लामपूर्ण काल के इतिहास में, अपने पूर्वजों ने क्रियाशील सत्वगुण का प्रगटीकरण किया। स्वाभाविकतया ही उस समय समाज का एक एक घटक व्यक्तिगत स्तर पर शीलसम्पन्न था। सामूहिक स्तर पर भी चैतन्युक्त था। वर्तमान भारत के पुनरुत्थान के लिये भूतकालीन भारत का पुनरुज्जीवन इसी कारण जरूरी है। दूसरी बात भारत भूमि यह जगज्जननी है यह भुला दिए जाने से सन् १९४७ के तत्कालीन कर्णधार विभाजन के आगे झुके। स्वातंत्र्योत्तर काल में भी चीन के आक्रमण के समय पराजय खानी पड़ी। ''विभाजन के गुनहगार'' इस पुस्तक में डॉ. राममनोहर लोहिया एवं पंडित जवाहरलाल नेहरू के बीच का संवाद है। डॉ. लोहिया ने कहा ''क्या ढाका शहर और पद्मा नदी पाकिस्तान को दान की जानी है?'' नेहरू जी का उत्तर था। ''भाई राम मनोहर! कीचड़ और दलदल की बंजरभूमि, अपनी ओर किसलिये रखी जाय?'' इसके दस वर्ष बाद ही जवाहरलाल जी ने संसद में लद्दाख के बारे में कहा, ''जहाँ घास भी नहीं उगती, उस भूमि के लिये क्यों लड़ा जाय?''

अपना देश भारत माता है। देवता है। यह भावना भुला दी गयी। भौतिकता की पकड़ में आकर देश के कीचड़, दलदल का ही स्मरण रहा। उसी में वे उलझ गये। फिर भक्ति कैसे निर्माण हो? समर्पण की, सामूहिकता की, पुरुषार्थ की, निर्मिति कैसे हो? मैं इस देश का कुछ देनदार हूँ, यह भाव हो तो ही सर्वसाधारण व्यक्ति देश के लिये सर्वस्वार्पण की मानसिकता होगी। उसी से चारित्र्य बनता है। भारत भक्ति का, चरित्र निर्मिति को योगदान निःस्संदेह महत्त्व का है। एक बौद्धिक में श्री गुरूजी के विचार कितने मार्मिक हैं –

''प्रत्येक कार्यकर्ता शील, चारित्र्य से परिपूर्ण चाहिये। अपने पथ से विचलित न होनेवाला योगी जैसा, उसका जीवन चाहिये। किसी व्यामोह से भ्रष्ट न होनेवाला, किसी भी प्रलोभन से खरीदा न जा सके – ऐसा कार्यकर्ता एकनिष्ठ भक्ति के कारण बनता है। अपने लक्ष्य पर अडिग श्रध्दा और उसकी प्राप्ति हेतु अविरल परिश्रम के कारण उसके मन में अन्य विचार प्रवेश नहीं करते। यदि किसी परिस्थिति के कारण व्यक्तिगत जीवन की चाह कुछ क्षणों के लिये निर्माण हुई तो भी वह स्थायी नहीं बनती। और उसका प्रलोभन कार्यकर्ता के मन को लुभा नहीं सकता।....... जब भक्ति प्रवेश करती है तब माया भाग जाती है। इस भक्ति के बलपर चारित्र्य का निर्माण करो।''

परमात्मा की भक्ति के समान ही, देशभक्ति भी किसी फल की अपेक्षा नहीं करती। श्री गुरूजी का भाष्य इस प्रकार है – ''भक्त की दृष्टि से भक्ति ही साधन, भक्ति ही साध्य – ''स्वयंफलरूपता''। उसी प्रकार समाज विषयक भक्ति से निर्माण हुआ कार्य स्वयंप्रेरित है। और यह उत्कट भक्ति ही उस कार्य का आधार है।

जब एक-एक समाज घटक समाज के प्रति शुद्ध भक्तिभाव से, सद्गुणों से, सहेजता है तो जैसा पहले कहा गया है स्वयंफलरूपता का प्रत्यय आता है। फिर यह भक्ति और इस भक्ति के कारण होनेवाली कृति नित्य की, स्थायी स्वरूप की होती है। वह नैमित्तिक या प्रासंगिक नहीं होती।

वस्तुतः अपना यह हिन्दूराष्ट्र प्राचीन काल से हम सभी को प्रेरणा देता रहा है। यह मन पर अंकित करना, राष्ट्रीय चारित्र्य बनाने के लिये अत्यंत आवश्यक है। कुछ प्रसंग ही ऐसे होते हैं कि भारत की प्राचीनता का सहज ही स्मरण होता है। स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद सोरठी सोमनाथ के जीर्णोद्धार का समारोह हुआ। अपने प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्रपसाद के हाथों यह जीर्णोद्धार हुआ। उस समय राष्ट्रपति महोदय नें अत्यंत भावविभोर होकर कहा, ''बारह सौ वर्ष का कलंक आज धोया

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

गया।'' श्री गुरुजी ने राष्ट्रपति के इस उद्‌गार पर आनंद व्यक्त किया। बारह सौ वर्ष मुगलों की और बाद में अंग्रेजों की सत्ता भारत में थी। इसी कारण सोरठी सोमनाथ का मंदिर भग्नावस्था में रहा। स्वांतत्र्य मिलने के बाद अपने शासन ने मंदिर का नये सिरे से निर्माण किया और कलंक धो डाला, इस पर राष्ट्रपति को श्री गुरुजी ने धन्यवाद दिया। किसी न किसी निमित्त से भारत का प्राचीनत्व नेताओं को याद आता है। वह हमेशा स्मरण में रहे, यह अपेक्षा भी व्यक्त की।

सीधे, निसंदिग्ध शब्दों में कहें तो श्री गुरुजी का यही आशय था कि चारित्र्य निर्मिति के लिये सभी के मन पर यह अंकित करना नितांत आवश्यक है कि ''भारत यह प्राचीनकाल से अस्तित्व में रहा हिन्दू राष्ट्र है।'' यह स्पष्ट शब्दों में कहनें में कई संकोच करते हैं। ये महाभाग ''सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात, न ब्रूयात्, सत्यमप्रियम,'' इस सुभाषित का आधार लेते हैं। जो प्रिय नहीं, वह सत्य न बोला जाय, यह मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। असल में यह सत्य अहिन्दुओं को, विशेषकर जातीय वृत्ति से अंधे मुसलमानों को अप्रिय लगता है। कोजागिरी पूर्णिमा की रात जब चंद्रप्रकाश सब को आनन्दित करता है, अगणित लोग हर्षभरित होकर, सामूहिक रूप से यह आनंद उठाते हैं। पर चोर उचक्कों को शरद पूर्णिमा का चंद्रप्रकाश सुहाता नहीं। तो क्या इसीलिये आप-हम इस पूर्णिमा की रात्रि को सूतक में रहें?

श्री गुरुजी तो कहते हैं,''मान लो यह सत्य कुछ लोगों को प्रिय नहीं लगता तो क्या सत्य बताना ही नहीं? असत्य को ही चिपकाये रखना? यह मीमांसा ही गलत है। ''सत्यमेव जयते'' यह भारतभूमि का प्रिय मंत्र है। तो हमें ''न ब्रूयात सत्यमप्रियम'' इस उपदेश पर पंक्ति का वास्तविक अर्थ समझाना होगा। सत्य, अप्रिय शब्दों में नहीं कहा जाय, प्रिय शब्दों में बताया जाय यह उपदेश इस पंक्ति में है। अपने प्राचीन हिन्दू राष्ट्र का सार्थ अभिमान नागरिकों के मन मे उपजने पर क्रियाशील सत्वगुणों का आविष्कार होता। व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चारित्र्य का आविष्कार होता है। पर लोग मद, मोह, मत्सर आदि विकारों के शिकार होते हैं - भ्रष्टाचारी बन सकते हैं, क्योंकि मनुष्य स्खलनशील है।'' श्री गुरूजी यह जानते थे। मोह से कौन छूट पाया है? आज के काल में तो स्वच्छन्द उपभोगवाद फैला हुआ है। इस वातावरण में संयमित एवं सादगीपूर्ण जिसके संस्कार किये जाने चाहिये। हमे अपना यह हिन्दू राष्ट्र वैभव के शिखरपर विराजमान कराना है।

श्री गुरुजी की दृष्टि जो 'नैतिकता' ऊपर से नीचे झरती है तो 'भौतिकता नीचे से ऊपर जाती है।

''वरिष्ठ नेता नैतिक दृष्टि से निर्दोष होंगे तो नीतिमत्ता झरते हुये समाज के निचले स्तर तक पहुँचेगी। परिणामतः सम्पूर्ण समाज में श्रेष्ठ चारित्र्य निर्माण होगा। चारित्र्य प्रथम सर्वोच्च स्तर पर निर्माण करना पड़ता है। उलटे शारीरीक सुविधाओं को निचले स्तर के लोगों को प्रथम उपलब्ध करा देनी चाहिये। समाज जीवन में सबसे निचली सीढ़ी पर जो खड़े हैं और दिन रात कष्ट करने पर भी जिन्हें अत्यंत कष्टमय, अपमानास्पद जीवन बिताना पड़ता है, उन्हें प्रथम खिलाओ। जो ऊँचे पद पर हैं, उन्हें एक समय का भोजन नहीं मिला तो भी कुछ बिगड़ेगा नहीं। शारीरिक जरूरतें नीचे से ऊपर हों। नीतिक्रमण ऊपर से नीचे - यही समाज की पुनर्रचना करने की, उसे शक्ति सम्पन्न करने की योग्य पद्धति है।''

''कार्यकर्ता के मन की बन्धुत्व की भावना स्वाभाविक और उत्स्फूर्त होनी चाहिये। सम्पूर्ण समाज यह ईश्वर का रूप है, यह उसकी भावना हो तो व्यक्ति का बाह्य रूपरंग कैसा है, इसका विचार

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/

मन में आना ही नहीं चाहिये। वह परमात्मा का ही तेजस्वी अंश है, यह धारणा रहे। आंतरिक एकता से ही समानता की दृष्टि उत्पन्न हो, यह अपनी संस्कृति की सीख है।" संघ शाखाओं से कार्यकर्ता का निर्माण इस प्रकार से हो। उसमें से एक एक समाज घटक अपने समाज से जोड़ा जाए और क्रियाशील सत्त्वगुण प्रगट हो यही श्री गुरुजी की आंतरिक इच्छा थी, आस थी।

"सम्पूर्ण समाज के प्रति विशुद्ध प्रेमभाव से, मन में स्वार्थ की या पारिश्रमिक की अपेक्षा नहीं रखते हुए, अपने राष्ट्र की सेवा हम करें। विशुद्ध और पवित्र राष्ट्रभक्ति के इन तेजस्वी किरणों से अपना चारित्र्य पुष्प विकसित होने दें। ऐसी अविचल और अनन्य भक्ति की आकाँक्षा से, उस हेतु हम प्रयत्न करें। बुद्धि और अहंकार के उस पार की अनन्य भक्ति हमारे रोम-रोम में घुली हो। विशुद्ध भक्ति का गहरा, गंभीर और अखंड प्रवाह रहे। सारे लोग इसी ओर अंगुली निर्देश कर रहे हैं।''

****

http://freehindibooksforyou.blogspot.com/